Research Scholar: Ravi Ranjan Kumar Thakur

Supervisor : Prof. Indu Virendra

Department : Hindi

Title : SAMKALEEN HINDI UPANYASON MEIN CHITRIT STREE KE SWAROOP KA ADHYAYAN (1970-2000)

संक्षिप्त शोध-सार

भारतीय समाज में स्त्री विषयक प्रवृत्ति आदर्श मानी जाती है, परंतु स्त्री नहीं। पितृसत्ता के बंधन ने उसे सदा ही कमजोर बनाकर रखा। भारतीय स्त्रियों की स्वतंत्रता उत्तर वैदिक युग के बाद बाधित होने लगी। धर्म एवं समाज के कतिपय विधानों के द्वारा स्त्री पर अनेक प्रतिबंध लगाये गए। इससे धीरे-धीरे स्त्री की भूमिका परिवार तक सिमटने लगी। लेकिन 19वीं शताब्दी में शुरु हुए समाज सुधार आन्दोलन एवं शिक्षा के प्रसार ने स्त्री को एक प्रकार से नवजीवन दिया।

स्त्री स्वरूप का अध्ययन वर्चस्ववादी इतिहास की पड़ताल करना भी है। उपन्यास का विषय मुख्यत: व्यक्ति, समाज एवं प्रकृति पर निर्भर होता है। उपन्यास जीवन व्यक्त करता है उसके आगे-पीछे और भी सच्चाई शेष रह जाया करती है। रॉल्फ फॉक्स का मानना है कि व्यक्ति ही उपन्यास का मूल विषय है। यह समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध... व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य कहा जा सकता है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों के चिन्तन-मनन से उनकी यह राय स्पष्ट हो जाती है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री का मौन एवं मुखर विद्रोह दिखाई देता है। स्त्री अपना अधिकार प्राप्त करना चाहती है जबकि समाज व्यवस्था उन्हें रोके रखना चाहती है। इन्हीं दोनों के बीच स्त्री का स्वरूप विकसित होता है। इसलिए स्त्री के स्वरूपगत विकास, निर्माण, बदलाव इन सभी के आकलन में समाज, इतिहास, संस्कृति, युग संदर्भ इत्यादि का पड़ताल आवश्यक हो जाता है।

मेरे शोध प्रबंध में 1970 से 2000 तक के प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यासों में स्त्री के स्वरूप की पड़ताल करने की कोशिश की गई है। इस दौर के उपन्यासों में स्त्री की सशक्त छवि दिखाई देती है। इन उपन्यासों में चित्रित स्त्री स्वरूप नए मूल्यों को अपनाकर स्वयं के स्वरूप को आकार देती नज़र आती है। यह समय अंतराल महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि इसी दौर में हमारे देश में कई प्रकार के बदलाव हुए। व्यक्ति और समाज दोनों इससे प्रभावित हुए, जिसका असर हिन्दी उपन्यासों पर पड़ा। इस दौरान विपुल मात्रा में हिन्दी उपन्यासों की रचना हुई जिसमें स्त्री के ऐसे स्वरूप का चित्रण मिलता है जो चिन्तन को नया आयाम देते हैं। तत्कालीन उपन्यासकारों ने ग्रामीण परिवेश से शहरी परिवेश तक कस्बा से लेकर महानगर तक हर तबके के स्त्री स्वरूप में आये बदलाव से उसका जो स्वरूपगत विकास हुआ है उन्हें अपने उपन्यासों के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इन उपन्यासों में वर्णित संपूर्ण स्त्री स्वरूपों का निचोड़ अगर एक वाक्य में प्रस्तुत किया जाए तो कहा जा सकता है कि परम संकट में अपनी आन्तरिक शक्ति एकत्रित करते हुए विरोधी तत्त्वों से निरंतर जूझने का संघर्ष ही इनके स्वरूप की विशेषता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक प्रविधि का सहारा लिया गया है। मेरा विषय मुख्य रूप से स्त्री के स्वरूप पर केन्द्रित है। अतः उसमें जो विकास हुए उस स्थिति को समझने की कोशिश करते हुए यथास्थान आवश्यकतानुसार ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग भी किया गया है।

शोध की स्थापनाएँ

1. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में बृहद स्तर पर निर्भीक स्त्रियों का चित्रण हुआ है, जो अन्याय, अत्याचार के प्रति अपना स्वर बुलंद करती हैं। इन स्त्रियों में प्रतिरोध की प्रवृत्ति दिखाई देती है। वे अपने मनोभावों को बेबाकी से बयान करती नज़र आती हैं।

2. शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण स्त्रियों में चेतना एवं सजगता बढ़ी है। साथ ही उनमें पुरुषों के समान्तर आर्थिक रूप से समर्थ होने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इससे उनकी जीवनशैली में परिवर्तन और चारित्रिक स्वरूप में बदलाव हुआ है।

3. समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने हमारे समक्ष इस तथ्य को दिखाने का प्रयास किया है कि स्त्री को पुरुषों से केवल तिरस्कार ही नहीं मिला है, अपितु सम्मान भी प्राप्त हुआ है। स्त्री जगत के बदलावों को पुरुषों का समर्थन मिलने लगा है।

4. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री की नवीन जीवन पद्धति का चित्रण मिलता है। ये स्त्रियाँ यौन नैतिकता को पुनः सृजित करती हुई, मूल्यगत बदलाव को स्वीकार करने वाली हैं। इनमें विसंगतियों से जूझने एवं बदलाव को अपनाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

5. समाज की मध्यवर्गीय स्त्रियाँ जो आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई हैं, उनके स्वरूप का चित्रण मिलता है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में इस वर्ग के स्त्रियों की सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण हुआ है। ये स्त्रियाँ एक-दूसरे की दुश्मन नहीं सहयोगी नज़र आती हैं।

6. बाज़ार ने स्त्री का केवल उपयोग ही नहीं किया, बल्कि उसमें उपभोग की प्रवृत्ति को भी बढ़ाया है। अब वे केवल उत्पीड़ित ही नहीं, अन्य रूपों में भी उभरकर सामने आई हैं।

उच्च वर्ग की स्त्रियों में उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस प्रवृत्ति के विकास का प्रमुख कारण बाज़ार और पूँजी है। बाज़ार, पूँजी और उपभोग की प्रवृत्ति के कारण स्त्री का उत्पीड़क स्वरूप भी उभर कर सामने आया है। 'काली आँधी' की मालती, 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' की पारुल, 'आवां' की अंजना वासवानी, निर्मला कनोई, गौतमी सान्याल इत्यादि इसके उदाहरण हैं। महानगरीय स्त्रियाँ चाहे वे जिस वर्ग से हो उनमें 'स्व' को साबित करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। मध्यवर्गीय स्त्री के स्वरूप में प्राचीन मूल्यों के प्रति विद्रोह एवं नवीन मूल्यों के स्वीकार की प्रवृत्ति को चिह्नित किया जा सकता है। शिक्षा ने इनके स्वरूप को निखारा है। इनमें आत्मस्वलंबन की प्रवृत्ति का विकास प्रमुख रूप से देखने को मिलता है। 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा, दिव्या, 'आवां' की नमिता, 'अर्द्धनारीश्वर' की विभा इसके उदाहरण हैं।

नवीन जीवन पद्धति को प्रश्रय इस वर्ग की स्त्रियों द्वारा प्रमुखता से दिया जा रहा है। शहरी क्षेत्र की स्त्रियों में नवीन जीवन पद्धति का आकलन प्रमुखता से किया जा सकता है उदाहरणस्वरूप 'उसकी पंचवटी' की साधवी, 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा, 'अर्द्धनारीश्वर' की सुमिता, शाहिदा, इत्यादि। निम्न वर्गीय स्त्रियों में साहस एवं निर्भीकता की भावना का विकास हुआ है। इन स्त्रियों में सबकुछ सहन कर लेने की प्रवृत्ति का ह्रास हुआ है। इस तरह ग्रामीण जीवन से संबंधित स्त्रियों में विसंगतियों से जूझने की शक्ति का विकास देखा जा सकता है। 'चाक' की सारंग, 'कगार की आग' की गोमती, 'अर्द्धनारीश्वर' की राजकाली, श्यामला इत्यादि इसके उदाहरणस्वरूप हैं। चाहे जिस रूप में हो समाज ने स्त्री की दृढ़ इच्छाशक्ति के समक्ष घुटने टेकना शुरू कर दिया है। समकालीन हिन्दी उपन्यास स्त्री के स्वरूप में आये बदलाव की पूर्ण दास्तान प्रस्तुत करता है।

भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से इस समय के उपन्यासों में विभिन्न प्रयोग किये गये हैं। इन उपन्यासों में कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टि से अनूठा प्रयोग देखने को मिलता है। पूर्व दीप्ति पद्धति का प्रयोग उपन्यास की कथा को प्रामाणिकता प्रदान करने वाला है। वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली के प्रयोगों द्वारा स्वरूपगत विशेषताओं को उभारने का कार्य किया गया है। उपन्यासों की पठनीयता को भाषिक संरचना ने बढ़ाया है, नवीन उपमाओं, रूपकों व बिम्बों के साथ। कहना न होगा कि समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने भाषा एवं शिल्प के विविध शैली को अपनाकर औपन्यासिक कथा एवं पात्रों के स्वरूप को समय एवं संदर्भ के अनुरूप बनाया है।

इस शोध कार्य को करते हुए तीन दशक के स्त्री स्वरूप को देखने-समझने का मौका मिला। इसके लिए विभिन्न उपन्यासों से गुजरना पड़ा। इनमें व्यक्ति और कर्तव्य के जटिल अन्तःसंबंध का प्रतिफलन एवं संघर्ष के बाद का जीवनानंद देखने को मिलता है। काव्यशास्त्र की दृष्टि से यही इन उपन्यासों का फलागम माना जा सकता है। उल्लेखनीय है कि इस दौर में उपन्यास पुरुष एवं स्त्री दोनों के द्वारा लिखे गये हैं। इनमें पुरुष रचनाकारों ने स्त्रीत्व के लिए मातृत्व आवश्यक माना है। स्त्री रचनाकारों ने विवाह को अस्मिता का नाश करने वाला माना है। समकालीन उपन्यासकारों में यह देखने को मिलता है कि जहाँ बात पत्नी व प्रेमिका की होती है वहाँ स्त्री को मानुषी की संज्ञा दी जाती है। उनकी इच्छाओं को पुरुष के सदृश बताकर उसके मनुष्य होने पर वे बल देते नज़र आते हैं। जब मातृत्व की बात आती है तो इसे महिमामंडित जरूर करते हैं। चाहे उसका रूप जैसा भी हो। मृदुला गर्ग व कृष्ण बलदेव वैद के यहाँ इस महिमा मंडन का अभाव है। स्त्री को जो बंधन में डाले ऐसी प्रवृत्ति को दोनों साहित्यकार प्रोत्साहन नहीं देते हैं। स्त्री को अगर अपना अस्तित्त्व कायम करना है तो बंधन से मुक्ति आवश्यक है। यह मुक्ति सीमाहीन होकर न रह जाये इसे भी समकालीन उपन्यासकारों ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

*** * * ***